पर्यावरण सामाजिक मुद्दे, समस्याएँ, Social Issues and Environment

सामाजिक मुद्दे एवं पर्यावरण: अपोषणीय से पोषणीय या संघृत विकास की ओर

पृथ्वी तथा इसके निवासियों का भविष्य हमारी क्षमताओं से संबंद्ध पर्यावरणीय अनुरक्षण (Maintainance) तथा परिरक्षण (Prservation) पर निर्भर करता है। इसी संदर्भ में पर्यावरण के दीर्घावधिक उपयोग एवं अभिवृद्धि के लिये संघृत विकास की संकल्पना का विकास हुआ है। 1990 के दशक में यह माना जाने लगा कि पर्यावरणीय संसाधनों के अतिदोहन या अविवेकपूर्ण तरीकों से उपयोग करने पर पर्यावरणीय ह्रास तथा अस्थिरता उत्पन्न हो रही है। यह सर्वाधिक विकासशील देशों में देखा गया है।

पोषणीयता या संघृतता (Sustainability) सभी प्राकृतिक पर्यावरणीय तंत्रों का एक अन्तर्निमित लक्षण है, जो मानवीय हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर स्वीकार करता है। यह किसी तंत्र की क्षमता तथा उसके सतत प्रवाह को अनुरक्षित (Maintain) रखने के लिये संबंद्ध करता है, जिसके फलस्वरूप वह तंत्र अपना स्वस्थ अस्तित्व रख पाता है। पर्यावरणीय संसाधनों के मानवीय उपयोग तथा पर्यावरणीय तंत्रों में हस्तक्षेप के कारण यह अन्तः निर्मित क्षमता विकृत हो जाती है, जो इसे असंघृत (Unsustainable) बना देती है।

जल संरक्षण Water Conservation

WATER CONSERVATION - Process of Saving Water for Future Utilization Need for Water Conservation ϖ To meet the increasing demands of water. ϖ To recharge the underground water. ϖ To reduce the ground water contamination from the intrusion of saline water. ϖ To reduce the surface runoff loss. ϖ To increase hydrostatic pressure to stop land subsidence. Methods of Water Conservation ¬Rain Water Harvesting ¬Watershed Management

विश्व में जल संकट निरंतर बढ़ता जा रहा है। 21वीं शताब्दी के इस प्रथम दशक में विश्व की 50 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में जल संकट को महसूस कर रही है जिसके अंतर्गत दुनिया की 40 प्रतिशत आबादी का नेतृत्व करने वाले 80 देश आते हैं जो जल संकट की भयंकर चपेट में है। जल के मुख्य स्रोत नदियाँ हैं तथा विश्व की 50 प्रतिशत जनसंख्या 250 नदी बेसिनों में निवास करती हैं। इनमें अनेक नदियाँ पूर्णरूपेण किसी एक देश में ही स्थित है। लेकिन कुछ नदियाँ अन्तर्देशीय हैं जिनका जल विभिन्न अनुपात में समझौतों के तहत उपयोग में लिया जाता है। प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर सभी देशों को स्वच्छ जल की मात्रा को संरक्षित करने की आवश्यकता है जिसके लिये विभिन्न भौगोलिक अवस्थितियों तथा परिस्थितियों में उपयुक्त विधि अपनाकर जल को संरक्षण प्रदान करना चाहिए। समय के साथ बढ़ती माँग एवं आर्थिक गतिविधियों की विविधता के संदर्भ में जल का उपयोग प्रतिरूप भी परिवर्तित हुआ है जिसे यद्यपि मूल रूप में पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता, वरन समय के साथ बदलते परिवेश में संरक्षित किया जा सकता है। इसके लिये निम्नांकित विधियाँ कारगर सिद्ध होंगी-

(i) जल की प्रदूषण से सुरक्षा

पृथ्वी पर उपलब्ध कुल स्वच्छ जल यदि प्रदूषण मुक्त रहे तो दुनिया की वर्तमान जनसंख्या की जलापूर्ति संबंधी

सम्पूर्ण कार्यों के लिये पर्याप्त लेकिन शुद्ध जल का बड़ा भाग बढ़ती आर्थिक क्रियाओं तथा नगरीयकरण आदि के कारण जगत के उपयोग के योग्य नहीं रहा है। महासागरीय जल सागरीय पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में पृथ्वी की एक प्रमुख पर्यावरणीय व्यवस्था है। लेकिन विगत शताब्दी में भारी मात्रा में प्रदूषण फैला है। सतही जल मुख्यतः नदियों व झीलों तथा भूमिगत जल भूपृष्ठ में विभिन्न गहराईयों में मिलता है जिसे प्रदूषित कर दिया गया है। नदियों के किनारे स्थित बड़े शहरों से विभिन्न अपशिष्टों का बिना उपचार के नदियों में प्रत्यक्ष विसर्जन किया जा रहा है। इसी प्रकार प्रसिद्ध झीलों तथा सागर तटों पर पर्यटन व्यवसाय ने युद्ध स्तर पर जल प्रदूषण फैलाया है। मानव अपनी जल संबंधी आवश्यकताओं के लिये भूजल पर सर्वाधिक निर्भर रहता है लेकिन कुछ विशिष्ट औद्योगिक इकाइयों ने भूमि के सुरक्षा कवच में स्थित इस जल राशि को भी प्रदूषित कर दिया है।

(ii) जल का पुनर्वितरण

भू-सतह पर पाया जाना वाला जल समान रूप से वितरित नहीं है। वितरण का वर्तमान प्रतिरूप भी संकट का कारण बन जाता है। अफ्रीका महाद्वीप में संसार की सर्वाधिक जल विदयुत सम्भाव्यता पायी जाती है क्योंकि यहाँ भूमध्यरेखीय प्रदेशों में जल की प्राप्ति अधिक है जबकि अफ्रीका के उत्तर में स्थित संसार का सबसे बड़े मरुस्थल सहारा वर्षभर जल संकट से ग्रस्त रहता है। सहारा के उत्तर में स्थित “सहेल” प्रदेश में आने वाले सूखे विश्व प्रसिद्ध है। इसी प्रकार भारत के पूर्वोत्तर भाग में संसार की सर्वाधिक वर्षा (मोसिनराम 1187 सेमी.) प्राप्त होती है जबकि पश्चिम में 50 सेमी. वर्षा होती है, परिणामस्वरूप पूर्वोत्तर भारत में ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियों में प्रतिवर्ष आने वाले जल का 60 प्रतिशत से अधिक भाग बिना उपयोग के ही लवणीय सागर में मिल जाता है। जबकि पश्चिमी राजस्थान में नदियाँ वर्ष के अधिकांश समय में शुष्क रहती है। अतः कम आवश्यकता वाले क्षेत्रों से अधिक आवश्यकता वाले क्षेत्रों को जलापूर्ति करके जल संकट को कम किया जा सकता है।

इसके लिये सतह जल संग्रह स्थलों का निर्माण करके अतिरिक्त जल को अभावग्रस्त क्षेत्रों में एकत्रित करके आपूर्ति की जा सकती है। यह कार्य जलाशयों तथा नहरी जाल विकसित करके ही सम्पन्न हो सकता है। इस दृष्टि से भारत में चल रही नदियों को जोड़ने की योजना कारगर सिद्ध होगी। वर्षा से प्राप्त वह जल जो नदियों द्वारा बिना उपयोग में लिये ही बह जाता है, जलाशयों का निर्माण करके ऐसे जल को संग्रहीत किया जाता है, जिससे कृषि, उद्योगों, नगरों आदि को जल की पूर्ति की जाती है। जलाशयों में एकत्रित जल में परिवहन तथा मत्स्यन की सुविधाएँ भी रहती हैं। नदियों में बाढ़ों के प्रकोप से बचने के उद्देश्य से भी ये जलाशय बनाए जाते हैं जिनके द्वारा बाढ़ से बचाव के साथ ही उस जल का विविध रूपों में उपयोग करते हैं।

(iii) भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग

विशव स्तर पर भूजल कुल जल आपूर्ति का 25 प्रतिशत पूरा करता है। शेष 75 प्रतिशत नदियों, झीलों आदि सतही जलस्रोतों से होती है। भूजल की उपलब्ध मात्रा के अनुपात में इसकी माँग निरंतर बढ़ती जा रही है जिस कारण भूजल की मात्रा कम होती जा रही है। भूजल का दोहन एक बार होने के उपरांत पुनः पूर्ति काफी लम्बे समय में पूर्ण हो पाती है, अतः भूजल की पुनः पूर्ति के अनुपात में ही दोहन किया जाना चाहिए। भारत में भूजल का सर्वाधिक उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता है। कृषि जलवायु दशाओं के अनुसार जल की माँग वाली फसलें न बोकर व्यापारिक महत्त्व की फसलों को बढ़ावा दिया जा रहा है जिस कारण भूजल का अतिदोहन किया गया है। राजस्थान के 1984 में कुल 237 विकास खंडों में से 203 भूजल दोहन की दृष्टि से सुरक्षित वर्ग में थे लेकिन विगत दो दशकों में भूजल के युद्धस्तर पर किए गए दोहन के कारण सुरक्षित विकास खंडों की संख्या घटकर वर्ष 2001 में केवल 49 रह गई तथा शेष खंड भूजल दोहन की

दृष्टि से अंधकारमय वर्ग में चले गए जहाँ भविष्य में विविध कार्यों हेतु आवश्यक मात्रा में भूजल उपलब्ध नहीं रहा है।

(iv) जनसंख्या नियंत्रण

जनसंख्या में तीव्र वृद्धि तथा जल संसाधन में प्रादेशिक रूप में मात्रात्मक एवं गुणात्मक कमी आने से जल संकट ने उग्र रूप ले लिया है। निरंतर जल की माँग बढ़ती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि के साथ ही कृषि एवं उद्योगों का विस्तार तथा नगरीयकरण बढ़ा है जिससे स्वच्छ जल की माँग भी बढ़ी है। सन 1700 से लेकर 2000 के दशक तक जल की माँग में वृद्धि विकासशील देशों में अधिक रही है। सन 2001 तक सम्पूर्ण दुनिया के लिये प्रतिवर्ष आवश्यक मात्रा 4350 क्यूबिक किलोमीटर आकलित की गई है। इसका 60 प्रतिशत कृषि में, 30 प्रतिशत उद्योगों में तथा 10 प्रतिशत रसोई, स्नान व पेयजल में आवश्यक है। अतः जनसंख्या नियंत्रण के द्वारा भी जल की माँग को नियंत्रित किया जा सकता है तथा साथ ही बढ़ती जनसंख्या द्वारा किए जा रहे जल के गुणात्मक ह्रास को रोका जा सकता है।

सन 2025 तक विश्व की जनसंख्या 8 करोड़ हो जाएगी जिसे मद्देनजर रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्पष्ट किया है कि समय रहते जनसंख्या नियंत्रण नहीं किया गया तो सम्पूर्ण विश्व को गम्भीर जल संकट का सामना करना पड़ेगा। संयुक्त राष्ट्र एवं केन्द्र सरकार ने वर्ष 2003 को 'स्वच्छ जल वर्ष' घोषित किया है।

(v) सिंचाई की उन्नत विधियों का उपयोग

विश्व स्तर पर वार्षिक जल के उपयोग में से 69 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में उपयोग होता है। कृषि क्षेत्र में आवश्यक जल की पूर्ति सतही जलस्रोत तथा भूमिगत जल से होती है। सिंचाई की उन्नत विधि अपनाकर जल के बड़े भाग को संरक्षित किया जा सकता है। सिंचाई में अन्य सभी आवश्यकताओं की तुलना में दोगुने जल की आवश्यकता होती है। फव्वारा तथा बूँद-बूँद सिंचाई विधियों में जल की 50 प्रतिशत बचत होती है। बूँद-बूँद या टपक सिंचाई पद्धति में सतह पर छिद्रदार पाइप का जल फैलाया जाता है जिसे फसल को प्रत्यक्ष रूप में पानी मिल जाता है। इस पद्धति में वाष्पीकरण से हानि नहीं होती है तथा लगभग 95 प्रतिशत जल का उपयोग हो जाता है। इस प्रकार सिंचाई में जहाँ जल का सर्वाधिक उपयोग होता है। संरक्षण के लिये फसल के प्रतिरूप के अनुसार उन्नत सिंचाई पद्धतियाँ अपनाई जानी चाहिए।

(vi) वनावरण में वृद्धि

जलीय परिसंचरण के अंतर्गत प्रतिवर्ष भू-सतह पर वर्षा के रूप में विभिन्न मात्रा में जल प्राप्त होता है। यह जल सतही जलस्रोतों द्वारा प्रवाहित होता हुआ सागरों तक पहुँचता है। इसका कुछ भाग स्थिर जलस्रोतों (झील एवं तालाब) में संग्रहित हो जाता है तथा कुछ मात्रा में भू-सतह के अंदर रिसकर भूजल का रूप ले लेता है। विगत शताब्दी में तीव्र गति से किए गए वनोन्मूलन के कारण वर्षाजल का अधिकांश भाग बिना भूमिगत हुए लवणीय सागरों में मिल रहा है। विश्व में सर्वाधिक वर्षा प्राप्त करने वाले क्षेत्र चेरापूँजी में विगत दशक में जल संकट उत्पन्न हो गया है क्योंकि यहाँ चूना पत्थर खनन हेतु वनावरण को नष्ट कर दिया गया। फलस्वरूप वर्षाजल तीव्रता से प्रवाहित होकर नदियों में मिल जाता है। ऐसा ही उत्तरांचल के देहरादून क्षेत्र में हो रहा है।

(vii) कृषि प्रतिरूप में परिवर्तन

कृषि जलवायु दशाओं के अनुसार फसल बोने पर अतिरिक्त जल की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन विकास के वर्तमान दौर में तीव्रता से बदलते फसल प्रतिरूप के अंतर्गत लाभकारी फसलों ने स्थान पाया है। इन व्यापारिक फसलों को अधिक जल की आवश्यकता होती है। राजस्थान के उत्तरी-पूर्वी भाग में जल उपलब्धता के अनुपात में फसलें नहीं

बोई गई तथा विगत तीन दशकों में सघन कृषि अपना ली गई। जल की उपलब्धता कम होने तथा फसलों में जल की अधिक माँग के कारण भूजल का अतिदोहन किया गया। फलस्वरूप भयंकर जल संकट उत्पन्न हो गया। अतः कृषि जलवायु दशाओं के अनुकूल फसल प्रतिरूप अपनाया जाए। जल की कम उपलब्धता वाले क्षेत्रों में कृषिवानिकी तथा बागानी कृषि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(viii) बाढ़ प्रबंधन

विश्व में बाढ़ के रूप में स्वच्छ जल का बड़ा भाग उपयोग में न आकर विनाशक बन जाता है। भारत के कुल क्षेत्रफल 328 करोड़ हेक्टेयर में से 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है जिसमें से 32 करोड़ हेक्टेयर भूमि को बाढ़ से बचाया जा सकता है। तटबंधों व नहरों का निर्माण करके बाढ़ के नुकसान से बचाव के साथ-साथ जल के बड़े भाग को संरक्षित किया जा सकता है। सघन वृक्षारोपण भी बाढ़ से सुरक्षा प्रदान करके जल को मृदा में शोषित करने में सहायक है। भारत में इस दृष्टि से गंगा, यमुना, महानदी, दामोदर, कोसी आदि के अपवाह तंत्रों को बाढ़ प्रबंधन के अंतर्गत लेकर कुल 1.44 रु. करोड़ हेक्टेयर भूमि को सीमा तक बाढ़ से सुरक्षा प्रदान की गई है।

(ix) उद्योगों में जल की बचत

विश्व स्तर पर वार्षिक जल के उपयोग का 23 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग होता है। कुछ विशेष उद्योगों में जल की खपत अधिक मात्रा में होती है तथा कुछ में जल के बड़े भाग को प्रदूषित कर दिया जाता है। रंगाई उद्योग तथा चमड़ा उद्योग इसी प्रकार के उद्योग हैं। एक टन इस्पात के निर्माण में 300 टन तक जल की आवश्यकता होती है। उद्योगों में जल की खपत जल की मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों रूपों में होती है। विकसित देशों में उद्योगों में जल के उपयोग का अनुपात अधिक (50 प्रतिशत) होता है जिसकी आपूर्ति 75 प्रतिशत सतही जलस्रोतों तथा 25 प्रतिशत भूमिगत जल द्वारा होती है। उद्योगों में जल को प्रदूषण से बचाने के साथ ही शुद्ध करके पुनः उपयोग का चक्र विकसित किया जाना चाहिए। क्योंकि सामान्यतः किसी औद्योगिक इकाई द्वारा एक बार उपयोग में लिया गया जल भू-सतह पर छोड़ दिया जाता है जो पुनः शोधन कर उपयोग में न लाने पर अन्य जलस्रोतों को भी प्रदूषित करता है। अतः उद्योगों में जल की मात्रा में कमी लाते हुए पुनः उपयोग किया जाना चाहिए।

(x) शहरी अपशिष्ट जल का पुनः उपयोग

बढ़ते नगरीयकरण से शहरों में जल की माँग में वृद्धि हुई है। विश्व के अनेक देशों में शहरों एवं कस्बों में अपशिष्ट जल के उपचार की व्यवस्था नहीं है जिससे बड़ी मात्रा में जल पुनः उपयोग में आने के स्थान पर दूसरे जल स्रोतों को भी प्रदूषित करता है। यमुना के किनारे स्थित दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि शहरों में यह स्थिति दृष्टिगत होती है जबकि अनके देशों में शहरी जल को उपचारित करके शहर के निकटवर्ती खेतों में सब्जियों तथा फल उगाने में किया जाता है। शहरों में उपयोग में आने के उपरांत विसर्जित अपशिष्ट जल को उपचार के उपरांत नगरीय परिधि में कृषि उपयोग में लाने से जल संरक्षण के साथ ही विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सकती है। नियोजित नगर विकास की नीतियों में इन नियमों का समावेश होना चाहिए।

(xi) नगर निकायों द्वारा जल संरक्षण

नगर निकायों द्वारा व्यक्तिगत आवश्यकता वाले जल के संरक्षण के लिये जल माँग एवं आपूर्ति दोनों पक्षों का प्रबंधन किया जाना चाहिए। शहरों में वर्षाजल को मकानों की छतों पर एकत्रित करने की व्यवस्था को नियमबद्ध लागू करना आवश्यक है।

वर्षाजल का संचयन (Rain Water Harvesting)

RAIN WATER HARVESTING ϖGround water plays a critical role in the urban environment. ϖUrbanization strongly affects ground water recharge flow and quality thereby creating serious impact on urban infrastructure ϖAs urban dwellings go on increasing shrinkage of open land leads to continuous decline in ground water levels in many areas.

Rain water harvesting is essential ¬ Due to rapid urbanization infiltration of rain water into the soil has decreased drastically and recharging of ground water has diminished. ¬ Over exploitation of ground water resources has resulted in declined in water levels in most part of the country. ¬ To enhance availability of ground water at specific place and time. ¬ To improve the water quality in aquifers. ¬ To improve the vegetation cover.

BENEFITS OF RAIN WATER HARVESTING ϖThe ground water level will rise. ϖQuality of water improves. ϖSoil erosion will be reduced. ϖSaving ground water . RAIN WATER HARVESTING TECHNIQUES: There are two main techniques of rain water harvestings. ϖStorage of rainwater on surface for future use. ϖRecharge of ground water.

भारत में पारम्परिक जल संग्रह स्थल जनसंख्या के एक बड़े भाग की जलापूर्ति करने में सक्षम रहे हैं लेकिन समय के साथ इनका अवनयन हुआ है। पारम्परिक जलस्रोतों में संग्रहीत जल का उपयोग कृषि एवं पेयजल दोनों रूपों में किया जाता रहा है। सिंचाई के लिये उपयोग में लायी गई पारम्परिक जल संरक्षण की पद्धतियों में पहाड़ी कुद्दल, जिंग (लद्दाख) कूल, अरुणाचल की जल कुंडियाँ जिन्हें खूप कहते हैं, नागालैंड की जाबो पद्धति, हरियाणा के आबी तालाब, असम के डाले पोखर, महाराष्ट्र के बंधरगारे, कर्नाटक के केरे, तमिलनाडु के इरी (तालाब), अंडमान निकोबार के जैकवेल तथा राजस्थान के नाडी, टांका, कुंड, खडीन कुंई, बेरी, बावड़ी, झालरा टोबा आदि महत्वपूर्ण है।

पारम्परिक जल संग्रह प्रणालियों की शुरुआत जावा में सर्वप्रथम 3000 ई. पू विशाल जलागार के निर्माण से हुई। भारत में हड़प्पा युगीन धौलावीरा की बस्तियों (3000-1500 ई.पू) में उन्नत जल संचय और नालियों की व्यवस्था का पता चलता है। भारत में वर्षा की प्रकृति के अनुसार ही ये जल संरक्षण की विधियाँ विकसित की गई थी लेकिन बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु कृषि विस्तार किया गया जिसके कारण इनका अवनयन हुआ है। किसी भी पारम्परिक जलस्रोतों का संरक्षण उसके जलीय भाग तक ही सीमित न होकर संपूर्ण अपवाह तंत्र तक विस्तृत होता है जहाँ से वर्षाजल प्रवाहित होकर उसमें संग्रहीत होता है। निरंतर बढ़ते कृषि क्षेत्र के कारण इनका अपवाह क्षेत्र नष्ट हो गया, जिसके फलस्वरूप इनमें जल की प्राप्ति कम हो गई तथा इनका अस्तित्व संकट में आ गया है।

इन जल संग्रह स्थलों को संरक्षित करके ही जल संकट से निजात पा सकते हैं। किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में जब तक वर्षाजल को पूर्णरूपेण संरक्षित नहीं किया जाएगा तब तक जल संरक्षण की संकल्पना पूर्ण नहीं होगी। अतः मृत हो रहे पारंपरिक जल संग्रह स्थलों को पुनर्जीवित करने के लिये इनकी निगरानी रखनी होगी। आज संपूर्ण दुनिया इस तथ्य से अवगत हो गई है कि विशाल मात्रा में पाया जाने वाला जल भी बिना संरक्षण के हमारी पकड़ से दूर हो जाएगा। इस दृष्टि से गाँव स्तर पर पारंपरिक जल स्रोतों का स्वामित्व निजी होना चाहिए जिसका समर्थन विश्व बैंक ने किया है।

प्रकृति में उपलब्ध कुल जल संसाधन का एक बड़ा भाग महासागरों में पड़ा है जो लवणीय होने के कारण जैविक समुदाय के लिये उपयोग के योग्य नहीं है। जलमंडल का केवल 26 प्रतिशत भाग ही शुद्ध जल के रूप में हैं जिसका

77.23 प्रतिशत भाग हिमटोपियों, हिमखंडों तथा हिमनदों के रूप में जमा हुआ है। अतः उपयोग योग्य शुद्ध जल का केवल 20.77 प्रतिशत ही है जो भूजल, मृदा, नदी, स्वच्छ जलीय झीलों तथा नदियों में वितरित है। हिम के रूप में जमा जल मानवीय उपयोग से काफी दूर है जो आर्कटिक क्षेत्र, अण्टार्कटिक महाद्वीप तथा उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित है। पृथ्वी के जलीय परिदृश्य का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि यहाँ बड़ी मात्रा में जल पाए जाने पर भी उसका आंशिक भाग ही जैविक समुदाय के उपयोग योग्य है जबकि बढ़ती जनसंख्या के साथ जल की मांग भी सतत रूप में बढ़ रही है।

जीवमंडल में पाया जाने वाला जैविक समुदाय मुख्यतः धरातलीय एवं भूजल का ही उपयोग करता है जो सीमित मात्रा में उपलब्ध है तथा जिसका मुख्य स्रोत वर्षाजल है। भू-सतह को प्राप्त होने वाले वर्षाजल का एक बड़ा भाग प्रतिवर्ष बिना उपयोग में लिये प्रवाहित होकर लवणीय सागरों में मिल जाता है, परिणामस्वरूप जल की कमी पूर्ववत बनी रहती है। अतः वर्षाजल के दक्षतम उपयोग (Optimum Use) द्वारा संतुलित रूप में जलापूर्ति सम्भव है। वर्षाजल का संग्रहण विभिन्न उद्देश्यों के लिये किया जाता है जिनमें घरेलू उपयोग, कृषि के लिये, अकृषि भूमि में प्रवाह नियंत्रण के लिये वर्षाजल का संचयन मुख्य है।

वर्षाजल के संचयन के लिये भारत में विभिन्न पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ विकसित की गई हैं जिनमें प्राचीन काल से वर्षाजल का संचयन किया जाता रहा है। इनमें संचित जल को घरेलू तथा सिंचाई कार्यों में उपयोग में लिया जाता कश्मीर में 12वीं सदी में सिंचाई व्यवस्था पूर्ण विकसित थी। पूर्वोत्तर राज्यों में 200 वर्ष पूर्व पथरीली भूमि से बांस की नलियों द्वारा जल संरक्षण की पद्धतियाँ अपना ली गई थी जो वर्तमान समय में भी विद्यमान है।

पश्चिमी भारत में कुंड, कुंई, टांके, तालाब, बावड़ियाँ आदि 500 वर्ष पूर्व विद्यमान थी जिनमें वर्षा के पानी को संरक्षित करके उपयोग में लाया जाता रहा है। पूर्वी घाट को पहाड़ियों में लोगों ने मध्य पूर्व की तकनीकी के अनुसार पहाड़ियों में नीचे कुओं तक सुरंगे बनाई जिनसे जल अंतःस्पंदित होकर कुओं को पूरित करता है। इसी प्रकार पूर्वी पहाड़ियों में वर्तमान बूँद-बूँद सिंचाई प्रणाली की तरह, ही पान के बागानों में सिंचाई हेतु बांस की नालियों द्वारा विकसित की हैं जहाँ पर कोई विकल्प नहीं है वहाँ वर्षा के पानी को तालाबों में एकत्रित करके सिंचाई करते हैं जिसे मध्य प्रदेश में हवेली कहते हैं।

वर्षाजल को संग्रहित करने के लिये विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में परंपरागत जल स्रोतों में सुधार के लिये सिफ़ारिशे

क्र.सं.	कृषि जलवायु क्षेत्र	वर्तमान तरीका
1	उत्तरी-पश्चिमी हिमालय के नमी वाले क्षेत्र	छतों के ऊपर का पानी एकत्रित
2	हिमालय के निचले क्षेत्र	तालाब एवं पहाड़ी ढलानों से ब
3	उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र (नमी एवं अधिक वर्षा वाले)	छतों द्वारा पानी एकत्रित करन
4	असम, बंगाल के नमी वाले मैदानी क्षेत्र	तालाब, एनीकट, बांध, नाले कं

5	सतलज गंगा का अर्द्धशुष्क जलोढ़ क्षेत्र	तालाब, नाले, कंटूर बांध
6	उत्तर प्रदेश के अर्द्धशुष्क और शुष्क क्षेत्र	नाडी, टांका, खडीन, एनिकट, न
7	विंध्यन के मध्यवर्ती अर्द्धशुष्क क्षेत्र सुधार	तालाब, बांध, कंटूर बांध, नाले
8	अधिक वर्षा वाले छोटा नागपुर के पठारी क्षेत्र	तालाब, एनिकट, बांध, नाले, क
9	काली मिट्टी सुनिश्चित और नर्मदा घाटी क्षेत्र वर्षा वाले मालवा पठार	तालाब, रोकने वाले बांध अन्त
10	परिवर्ती वर्षा वाले दक्षिण के पठार का अनिश्चित वर्षा वाला दक्षिण मध्य भाग	तालाब, बांध रिसावदार बांध, ब
11	छत्तीसगढ़ के पठारी क्षेत्र	तालाब, बांध नाले, रिसावदार ब
12	दक्षिणी-पूर्वी लाल मिट्टी का क्षेत्र	तालाब, बांध रिसावदार तालाब
13	दक्षिणी के अनियमित वर्षा और मिश्रित वर्षा वाले क्षेत्र	तालाब, जलाशय, रिसावदार त
14	दक्षिण के दो प्रकार के वर्षा वाले क्षेत्र	जलाशय, तालाब रिसावदार ता
15	पूर्वी तटीय क्षेत्र	तालाब

राजस्थान में वर्षाजल का संचयन

पानी के उचित प्रबंध हेतु पश्चिमी राजस्थान में आज भी पराती (लोहे का बड़ा बर्तन) में चौकी रखकर उस पर बैठकर स्नान करते हैं, ताकि शेष बचा पानी अन्यत्र घरेलू उपयोग में आ सके। राज्य में निम्नलिखित जल संरक्षण की संरचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं-

1. तालाब:

बरसाती पानी को संचित करने का तालाब प्रमुख स्रोत है। प्राचीन समय में बने इन तालाबों में अनेक प्रकार की कलाकृतियां बनी हुई हैं। इन्हें हर प्रकार से रमणीक एवं दर्शनीय स्थल के रूप में विकसित किया जाता है। इनमें अनेक प्रकार के भित्ति चित्र इनके बरामदों, तिबारों आदि में बनाए जाते हैं। कुछ तालाबों की तलहटी, के समीप कुआँ बनाते थे जिन्हें बेरी कहते हैं।

2. झीलें

राजस्थान में जल का परम्परागत ढंग से सर्वाधिक संचय झीलों में होता है। यहाँ पर विश्व प्रसिद्ध झीलें स्थित हैं। जिनके निर्माण में राजा-महाराजाओं, बनजारों एवं आम जनता का सम्मिलित योगदान रहा है। विश्व प्रसिद्ध पुष्कर झील का अस्तित्व धार्मिक भावना से ओत-प्रोत है। इन तालाबों से सिंचाई के लिये भी जल का उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इनका पानी रिसकर बावड़ियों में पहुँचता है जहाँ से इसका उपयोग पेयजल के रूप में करते हैं।

3. नाडी:

नाडी एक प्रकार का पोखर होता है, जिसमें वर्षाजल संचित होता है। इसका आगोर विशिष्ट प्रकार का नहीं होता है। राजस्थान में सर्वप्रथम पक्की नाडी निर्माण का विवरण सन 1520 में मिला है, जब राव जोधाजी ने जोधपुर के निकट एक नाडी बनवाई थी। पश्चिमी राजस्थान में लगभग प्रत्येक गाँव में एक नाडी अवश्य मिलती है। नाडी बनाते समय बरसाती पानी की मात्रा एवं जल ग्रहण क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही जगह का चुनाव करते हैं। इनमें संचित पानी इनकी क्षमता के अनुसार चलता है। नाडी निर्माण करने वाले स्थान से ही उसका आगोर एवं जल निकास तय होता है। रेतीले मैदानी क्षेत्रों में नाडियाँ 3 से 12 मीटर गहरी होती हैं। इनका जल ग्रहण क्षेत्र (आगोर) भी बड़ा होता है।

4. बावड़ी:

राजस्थान में कुआँ व सरोवर की तरह ही वापी (बावड़ी) निर्माण की परंपरा अति प्राचीन है। राजस्थान में बावड़ी निर्माण का मुख्य उद्देश्य वर्षाजल का संचय रहा है। आरम्भ में ऐसी बावड़ियाँ हुआ करती थी जिनमें आवासीय व्यवस्था हुआ करती थी। कालिदास ने रघुवंश में शातकर्णि ऋषि के एक कीड़ा सरोवर का उल्लेख किया है।

5. झालरा:

झालराओं का कोई जलस्रोत नहीं होता है। ये अपने से ऊँचाई पर स्थित तालाबों या झीलों के रिसाव से पानी प्राप्त करते हैं। इनका स्वयं का कोई आगोर नहीं होता है। झालराओं का पानी पीने के लिये उपयोग में नहीं आता था। उनका जल धार्मिक रीति-रिवाजों को पूर्ण करने, सामूहिक स्नान व अन्य कार्यों हेतु उपयोग में आता था।

6. टोबा:

नाडी के समान आकृति वाला जल संग्रह केन्द्र टोबा कहलाता है। टोबा का आगोर नाडी से अधिक गहरा होता है। इस प्रकार थार के रेगिस्तान में टोबा एक महत्त्वपूर्ण पारम्परिक जल स्रोत हैं। सघन संरचना वाली भूमि जिसमें पानी का रिसाव कम होता है। टोबा निर्माण हेतु उपयुक्त स्थान माना जाता है। इसका ढलान नीचे की ओर होना चाहिए। इसके जल का उपयोग मानव व पशुओं द्वारा किया जाता है। टोबा के आस-पास नमी होने के कारण प्राकृतिक घास उग जाती है, जिसे जानवर चरते हैं।

जलग्रहण प्रबंधन   Water Shed Management

Water shed management ϖwatershed is a basin like landform defined by peaks which are connected by ridges that descend into lower elevations and small valleys. ϖIt carries rainwater falling on it drop by drop and channels it into soil and streams flowing into large rivers. ϖIt involves management of land, water, energy and greenery integrating all the relevant approaches appropriate to socioeconomic background for a pragmatic development of a watershed.

जलग्रहण वह भौगोलिक इकाई क्षेत्र है, जिसमें गिरने वाला जल एक नदी या एक-दूसरे से जुड़ती हुई कई छोटी नदियों के माध्यम से एकत्रित होकर एक स्थान से (Single Outlet) होकर बहता है।

ढालू एवं पर्वतीय क्षेत्रों में केवल देखने से ही जलग्रहण क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है। नदी के संगम स्थल से ऊपर की ओर का क्षेत्र जिसमें पड़ने वाला जल इस स्थान से होकर बह रहा है, उस नदी के जलग्रहण क्षेत्र की सीमा निर्धारित करेगा। जैसे विकासखंड, गाँव व जिला आदि की अपनी एक भौगोलिक सीमा होती है, परंतु उक्त सीमा प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है और इसमें प्रशासकीय आवश्यकताओं हेतु परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

सामान्यतः कुछ लक्षण छोटे अथवा बड़े हर जलग्रहण में विद्यमान रहते हैं, जैसे-

1. हर जलग्रहण क्षेत्र का सम्पूर्ण पानी सिर्फ एक निकास से जलग्रहण की सीमा पार करता है।
2. कोई भी क्षेत्र एक ही श्रेणी के दो जलग्रहण क्षेत्रों में नहीं आता है।

विकास से संबंधित पूर्व के अनुभवों पर आधारित विशेषकर सूखा सम्भावित व पर्वतीय क्षेत्रों में यह महसूस किया गया कि विभिन्न विकास कार्यक्रमों का परस्पर समन्वय अधिकतम सर्वांगीण विकास के लिये आवश्यक है। विकास के नाम पर पिछले कुछ दशकों में विकास संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया गया है। फलतः अधिकांश क्षेत्रों में संसाधनों की उपलब्धता में अत्यधिक कमी का अनुभव किया जा रहा है, जो कि ढाँचागत विकास पर भी विपरीत प्रभाव डाल रही हैं।

अब समय की मांग है कि तेजी से कम होते संसाधनों को संरक्षित एवं पुनर्जीवित किया जाए। उपलब्ध संसाधनों को पुनर्जीवित करना उनको संरक्षित किए बिना कठिन है। भूमि एवं जल संरक्षण परस्पर जुड़े हुए हैं व इनका यह संबंध जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। इनको संरक्षित करने के लिये सर्वाधिक उपयुक्त तरीका यह होगा कि हम अपने प्रयासों को एक सीमित क्षेत्र के अंदर केन्द्रित करें। प्राथमिक संसाधनों के परस्पर सुधार संबंध में लाने तथा इसके उचित प्रबंधन हेतु भूमि एवं जल के द्वारा निर्धारित क्षेत्र जलग्रहण में कार्य करना ही सर्वाधिक उपयुक्त है।

जलग्रहण क्षेत्र की सीमा के अंतर्गत होने वाली विभिन्न प्रक्रियाएँ उपलब्ध संसाधनों के ऊपर प्रभाव डालती है। किसी भी विकास प्रक्रिया का टिकाऊ (पोषणीय) होना संसाधनों के परस्पर संबंधों को गहराई से समझने व परिस्थितियों के अनुरूप कार्य करने पर निर्भर है। जलग्रहण विकास कार्यक्रम जहाँ प्राथमिक संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा पैदावार

बढ़ाने का एक समन्वित प्रयास है, वहीं इसमें इस बात का ध्यान रखा गया है कि प्राकृतिक संतुलन पर किसी प्रकार का प्रतिकूल असर न पड़े।

जलग्रहण विकास कार्यक्रम की तकनीक स्थानीय समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है और स्थानीय लोह के सहयोग से परंपरागत ज्ञान का लाभ उठाते हुए इनका समाधान तलाशने का प्रयास करती है। स्थानीय लोगों के सहयोग से तलाशे गए ये समाधान समाज में आसानी से प्रचलित किए जा सकते हैं वैसे ही सदियों से संसाधनों का उपयोग परोक्ष रूप से जलग्रहण की सीमाओं द्वारा ही निर्धारित किया जाता रहा है। उदाहरण के तौर पर शुष्क एवं पहाड़ी क्षेत्रों में आज हम जो भूमि उपयोग देखते हैं, वह प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर उपयोग पर ही आधारित है और यह जलग्रहण की सीमाओं द्वारा संचालित है।

जलग्रहण की सीमा निर्धारण

हर जलग्रहण क्षेत्र किसी न किसी जलधारा से जुड़ा होता है और इसे प्रायः उसी जलधारा के नाम से जाना जाता है। वह पूरा का पूरा क्षेत्र जो इस जलधारा को पोषित करता है जलग्रहण की सीमा में आता है। जलधारा के चारों ओर के क्षेत्र में ऊँचे स्थानों व पहाड़ियों को मिलाने वाली रेखा साधारणतः जलग्रहण की सीमा का निर्धारण करती है। निश्चित श्रेणी का हर जलग्रहण क्षेत्र एक विशिष्ट स्थान घेरता है, अतः कोई भी स्थान एक ही श्रेणी के दो या अधिक जलग्रहण की सीमा में नहीं आ सकता। जलग्रहण विकास कार्यक्रमों को आरम्भ करने से पहले जलग्रहण क्षेत्र की समस्याओं का निर्धारण अत्यंत आवश्यक है। यह काम बहुत ही सरल है व निम्नलिखित बातें इस कार्य में सहायक होंगी-

i. सर्वप्रथम भारतीय सर्वेक्षण विभाग के भू-आकृति मानचित्र में संबंधित जलग्रहण क्षेत्र को ढूंढिए
ii. इस क्षेत्र की जलधाराओं का अध्ययन कीजिए और ऐसा स्थान ढूंढ़िए जिससे होकर संबंधित जलग्रहण क्षेत्र का समस्त जल बाहर जाता है एवं उच्च श्रेणी की जलधारा को पोषित करता है।
iii. चुने हुए स्थान के चारों ओर ऐसे ऊँचे बिन्दुओं की पहचान कीजिए जिनके दूसरी ओर का पानी बहकर संबंधित जलधारा में न आए
iv. इन बिंदुओं को मिलाने पर हमें उस जलग्रहण क्षेत्र की सीमाएँ मिलेंगी जिसमें कार्य करना चाहते हैं
v. अगर इच्छित क्षेत्र पूरी तरह से संबंधित जलग्रहण क्षेत्र में नहीं आता, तो इससे उच्च श्रेणी का जलग्रहण बनाएँ
vi. किसी मुख्य नदी के दोनों ओर कई छोटे जलग्रहण क्षेत्र बनाने के बाद भी कुछ क्षेत्र किसी भी जलग्रहण क्षेत्र की सीमाओं में नहीं आते हैं और ये क्षेत्र इस नदी के वृहद जलग्रहण क्षेत्र में आएँगे।

बदलते समय की चुनौतियों का सामना करने के लिये यह सुनिश्चित किया जाए कि विकास नीतियों में आया परिवर्तन जो कि मरुस्थलीय व पर्वतीय क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों के पूर्णतः अनुरूप है, वास्तविक अर्थों में निरूपित हो सके। गाँव स्तर पर यह अनुभव किया जा रहा है कि कार्यक्रम क्रियान्वयन से संबंधित कार्यकर्ता विकास गतिविधियों को करने में सक्षम है परंतु प्रभावी योजना निर्धारण व जलग्रहण प्रबंध से संबंधित तकनीकी सहायता का अभाव है।

जलग्रहण विकास कार्यक्रम के उद्देश्य

i. प्राथमिक संसाधनों के विकास की एक ऐसी रणनीति तैयार करना जिसके द्वारा हम अपने अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति सहजता से कर सकें।
ii. बेहतर भू-उपयोग एवं उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करना
iii. पानी के बहाव को नियंत्रित कर भूमि कटाव रोकना

iv. जल संरक्षण एवं भूगर्भिक जल में वृद्धि करना

v. बाढ़ नियंत्रण, जलाशयों एवं नदियों में गाद का जमाव रोकना

vi. वैज्ञानिक और तकनीकी रूप से उपयुक्त कृषि, बागवानी एवं चारागाह पद्धतियों का विकास करना संक्षेप में, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जलग्रहण विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य संसाधनों के बेहतर प्रबंधन द्वारा पोषणीय उत्पादकता प्राप्त कर स्थानीय लोगों के जीवन स्तर को सुधारना है।

जलग्रहण विकास कार्यक्रम में बाधाएँ

वर्तमान परिस्थितियों में कई प्राकृतिक एवं मानव जनित स्थितियाँ हैं, जो कि विकास की सामान्य गति को प्रभावित करती हैं, जिनमें प्रमुख निम्न हैं-

- अशिक्षा के कारण जागरूकता का अभाव
- सहभागिता का अभाव एवं स्थानीय राजनीति
- कठिन पहुँच कठिन भौगोलिक परिवेश
- संवेदनशील पर्यावरण
- तकनीकी जानकारी व उपयुक्त मानव क्षमता का अभाव
- सही आकड़ों एवं सूचना तकनीकी का अभाव
- अनुपयोगी व अकुशल विकासात्मक ढाँचा?
- धन का अभाव
- क्रियान्वयन एजेंसी एवं ग्रामीणों में परस्पर संशय का भाव

इनके अतिरिक्त स्थान विशेष की अपनी भी कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ हो सकती है।

जलवायु में परिवर्तन Climate Change

प्रकृति के साथ मनमानी छेड़छाड़ से सदियों से संतुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा गए हैं। तीव्र औद्योगीकरण एवं वाहनों के कारण धरती दिन-प्रतिदिन गरमाती जा रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है। पिछली सदी के दौरान औसत तापमान 03 से 06 डिग्री सैल्सियस की वृद्धि होने मात्र से ही जलवायु डगमगा गई है और खतरनाक नतीजे सामने आने लगे है। इस दौरान महासागरों का जल स्तर 10.25 सेंटीमीटर ऊँचा हो गया है, जिसमें 27 सेमी की बढ़ोतरी बढ़े हुए तापमान के कारण पानी के फैलाव से हुई है। जलवायु एक जटिल प्रणाली है, इसमें परिवर्तन आने से वायुमंडल के साथ ही महासागर, बर्फ, भूमि, नदियाँ, झीलें तथा पर्वत और भूजल भी प्रभावित होते हैं। इन कारकों के परिवर्तन से पृथ्वी पर पायी जाने वाली वनस्पति और जीव जंतुओं पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है। सागर के वर्षा वन कहलाए जाने वाले मूंगा की चट्टानों पर पाए जाने वाली रंग-बिरंगी वनस्पतियाँ प्रभावित हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन से सूखा पड़ेगा जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा। जल की उपलब्धता भी घटेगी, क्योंकि वर्तमान समय में कुल स्वच्छ पानी का 50 प्रतिशत मानवीय उपयोग में लाया जा रहा है।

जलवायु परिवर्तन से कृषि के साथ ही वनों की प्राकृतिक संरचना भी बदल सकती है। सूक्ष्म वनस्पतियों से लेकर विशाल वृक्षों तक का तापमान और नमी का एक विशेष सीमा में अनुकूलन रहता है। इसमें परिवर्तन होने से ये

वनस्पतियाँ या तो अपना स्थान परिवर्तित कर लेंगी या सदा के लिये विलुप्त हो जाएगी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बढ़ती जनसंख्या एवं शहरीकरण के कारण इन्हें दूसरा रास्ता ही अपनाना होगा। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन से विश्व के एक-तिहाई वनों को खतरा है। कुछ तापमान से वनाग्नि की घटनाएँ भी बढ़ रही है। वनाग्नि से वायुमंडल की कार्बनडाइ ऑक्साइड की मात्रा बढ़ सकती है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से अनिश्चितता की स्थिति में आने वाले मुख्य क्षेत्र?

- नदियों एवं झीलों में जल की अनुक्रिया
- उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की बारम्बारता
- स्थायी हिम के पिघलने का प्रतिरूप हिमनदों
- हिमटोपियों की अनुक्रिया
- सागर तल में उत्थान की सीमा
- सागर तल के उत्थान से पुलिन क्षेत्रों की अनुक्रिया
- प्रवाल भित्तियों, डेल्टा तथा आर्द्र भूमि की स्थिति

पृथ्वी को जलवायु परिवर्तन होने से कई संक्रामक रोगों का प्रकोप भी तीव्र गति से बढ़ रहा है। ठंडे देशों में लू जैसी हवाएँ चलने लगी है। 1995 के जुलाई माह में सिकागो में एक सप्ताह तक गर्म हवाएँ (लू) चली। जिससे 50 लोग मारे गए। जलवायु परिवर्तन एवं मलेरिया में अनुकूल संबंध है, क्योंकि मलेरिया फैलाने वाले मच्छर और मलेरिया परजीवि दोनों को ही ठंडी जलवायु रास नहीं आती है, बढ़ते तापमान में ये स्वतंत्र कार्य करते हुए अनेक संक्रामक रोग फैलाते हैं। रवाण्डा में सन 1960 में एक डिग्री सैल्सियस तापमान बढ़ने से मलेरिया में दोगुनी वृद्धि हो गई। कुख्यात डेंगू बुखार भी तापमान वृद्धि से ही होता है। वैज्ञानिक का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के कारण पुनः उत्पन्न होने वाले संक्रामक रोगों का सर्वाधिक कहर विकासशील देशों को झेलना पड़ेगा। अतः प्रकृति की ओर वापसी का मूल मंत्र अपनाना होगा।

विश्व तापमान में वृद्धि Global Warming

औद्योगिकरण की बढ़ती प्रक्रिया के कारण वायुमंडल में कार्बनडाइ आॅक्साइड की मात्रा बढ़ी है, जिसमें हरित ग्रह प्रभाव को जन्म दिया है। पृथ्वी पर पाई जाने वाली कार्बनडाइ आॅक्साइड की मात्रा बढ़ने से धरती की सहत से परावर्तित किरणों द्वारा उत्सर्जित होने वाली तापीय ऊर्जा को वायुमंडल से बाहर जाने से रोकती है। इस प्रकार तापीय ऊर्जा के वायुमण्डल में सान्द्रण से धरती के औसत तापमान में वृद्धि होती है जिसे विश्व व्यापी तापन (Global Warming) कहते हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि विश्व तापमान में वृद्धि के कहर से पृथ्वी की जलवायु परिवर्तित होगी जिसके तहत वर्षा में कमी आएगी। वर्षा की कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि पर पड़ेगा तथा सूखे की स्थिति उत्पन्न होगी। तापमान वृद्धि एवं वर्षा की कमी के कारण वन क्षेत्र तेजी से घटेगा जिससे जैव विविधता का भी ह्रास होगा। तापमान वृद्धि के लिये कार्बन डाइआॅक्साइड के अतिरिक्त मिथेन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन यौगिक तथा नाइट्रस आॅक्साइड भी उत्तरदायी है। भू-मंडल के गरमाने से नजदीकी और दूरगामी दोनों प्रभाव मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिये घात हों। नजदीकी प्रभावों में तापीय वृद्धि के कारण मृत्यु सूखा, तूफान, बाढ़ एवं पर्यावरण अवनयन प्रमुख है। दूरगामी प्रभावों में

संक्रमण एवं संबंधित रोग, खाद्य समस्या, अकाल तथा जैव विविधता को खतरा पैदा होगा। इनके अतिरिक्त ताप वृद्धि से ध्रुवीय एवं कुछ पर्वतीय बर्फ पिघलने से समुद्री किनारे पर स्थित कई शहर डूब सकते हैं।

अम्ल वर्षा Acid Rain

मानव के लिये जल विभिन्न उपयोगों हेतु महत्त्वपूर्ण है। यह जल मुख्य रूप से वर्षा से प्राप्त होता है। वर्तमान समय में मानव जनित स्रोतों से निःसृत सल्फर डाइ आॅक्साइड वायुमंडल में पहुँचकर जल से मिश्रित होकर सल्फेट तथा सल्फ्यूरिक अम्ल का निर्माण करती है। जब यह अम्ल वर्षा के साथ धरातल पर पहुँचता है तो इसे अम्ल वर्षा कहते हैं। जल की अम्लता को मापते हैं, जब जल का PH-7 हो तो उसे तटस्थ जल कहते हैं। सामान्य वर्षा का PH5 होती है, लेकिन ये मानक 4 से कम होता है तो यह जल जैविक समुदाय के लिये हानिकारक होता है। जितनी अधिक मात्रा में सल्फर डाइ आक्साइड और नाइट्रोजन आॅक्साइड का सान्द्रण वातावरण में होगा उतना ही वर्षाजल का PH घटेगा।

वैज्ञानिकों का मानना है कि अम्ल वर्षा सल्फर डाइ आॅक्साइड और नाइट्रोजन आॅक्साइड उगलने वाले औद्योगिक एवं परिवहन स्रोतों के क्षेत्रों तक सीमित नहीं होती वरन वह स्रोत क्षेत्रों से दूर अत्यधिक विस्तृत क्षेत्रों को प्रभावित करती है, क्योंकि अस्त वर्षा के उत्तरदायी कारक प्रदूषक (जैसे- सल्फर डाइ आॅक्साइड) गैसीय रूप में होते हैं, जो हवा एवं बादलों द्वारा दूर तक फैल जाते हैं। कभी-कभी अम्ल वर्षा को झील कातिल भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ के विभिन्न जल स्रोतों, झीलों, तालाबों एवं छोटे बड़े जल भण्डारों आदि के जल जीवों की मृत्यु का उत्तरदायी कारक अश्व वर्षा को माना गया है।

अम्ल वृष्टि के कारण मृदा उत्पादकता प्रभावित होती है। अम्लता के कारण मृदाओं के खनिज तथा अन्य पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। अम्ल वर्षा वनों को भी प्रभावित करती है। अनेक ऐतिहासिक इमारतें तथा स्मारक जो संगमरमर तथा लाल पत्थर से निर्मित है उन पर अम्ल वृष्टि से संक्षारण के कारण क्षति हो रही है। भारत में ताजमहल, मोती मस्जिद, लाल किला आदि को अम्ल वृष्टि से क्षति हो रही है। भारत में वर्तमान समय में अम्ल वृष्टि की समस्या अमरिकी एवं पश्चिमी देशों की तुलना में इतनी विकराल नहीं है।

ओजोन परत का क्षयीकरण Ozon Layer Depletion

धरती के लिये रक्षा कवच की तरह काम करने वाली ओजोन गैस की परत हानिकारक पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। ओजोन के ह्रास के लिये क्लोरोफ्लोरो कार्बन गैस उत्तरदायी है।

ओजोन गैस

वायुमंडल में 30-60 किमी की ऊँचाई पर ओजोन गैस की परत पाई जाती है, जिसका निर्माण आॅक्सीजन के अणुओं के टूटकर मिलने से होता है। इस ऊँचाई पर तीव्र पराबैंगनी किरणों के कारण पर्याप्त तापमान मिलता है जिसके कारण O_2 के अणु टूटकर O+O हो जात है तथा दूसरे O_2 से मिलकर ओजोन (O3=O2+O) का निर्माण करते हैं। इसका निर्माण 30-60 किमी की ऊँचाई पर होता है तथा न ही इससे नीचे हो पाता है क्योंकि 60 किमी. की ऊँचाई पर पर्याप्त दबाव नहीं मिल पाता है जो इनके संलयन के लिये आवश्यक है। इसी प्रकार 30 किमी से नीचे दबाव तो पर्याप्त मिलता है लेकिन यहाँ आॅक्सीजन अणुओं के संलयन के लिये आवश्यक तापमान पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता है अतः इसी कारण 30 किमी. से नीचे तथा 60 किमी. से ऊपर ओजोन गैस नहीं मिलती है। इसकी सर्वाधिक सघनता भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में मिलती है। ध्रुवीय क्षेत्रों में इसकी सघनता कम ऊँचाई पर मिलती है। प्रकृति का प्रत्येक तत्व मानव कल्याण के लिये

होता है, लेकिन जब मानव उससे अनावश्यक छेड़-छाड़ करने लगता है तो उसके दुष्परिणाम परिलक्षित होने लगते हैं। ओजोन भी इससे अछूती नहीं है।

वायुमंडल में पाई जाने वाली ओजान की परत सूर्य की पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर उसके दुष्प्रभाव से हमारी रक्षा करती है। सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणें मानव त्वचा पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है जिस कारण त्वचा कैंसर होने की संभावना रहती है। पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के एक प्रतिवेदन के अनुसार ओजोन की मात्रा में 1 प्रतिशत की कमी होने पर त्वचा कैंसर से पीड़ित मनुष्यों की संख्या में 2 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है।

हरित गृह प्रभाव

मानव की प्रकृति विरोधी नीतियों एवं कार्यों के कारण संतुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा गए हैं, इसी संदर्भ में पृथ्वी के वायुमंडल में कुछ विशेष गैसों की मात्रा इस सीमा तक बढ़ गई की धरती की ऊष्मा या गर्मी बाहर नहीं निकल पा रही है, इससे उत्पन्न प्रभाव को हरित गृह प्रभाव कहते हैं।

ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोष के अनुसार- वायुमंडल में मानव जनित कार्बनडाइ आॅक्साइड के आवरण प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह की प्रगामी तापन को हरित गृह प्रभाव कहते हैं। हरित गृह प्रभाव उत्पन्न करने वाले देशों में कार्बनडाइ आॅक्साइड, जलवाष्प, मिथेन और नाइट्रसआॅक्साइड प्रमुख से बाहर जाने वाली दीर्घ तरंगों को अवशोषित करने के कारण हैलोजनिक गैसें तथा क्लोरोफ्लोरोकार्बन भी हरित गृह गैसों की श्रेणी में आती है। इनमें सबसे अधिक योगदान कार्बनडाइ आॅक्साइड का रहता है।

हिम का पिघलना

जलवायु परिवर्तन के तहत तापमान बढ़ने के कारण संसार के सबसे बड़े स्वच्छ जलीय भाग, जो बर्फ के रूप में पाए जाते हैं, पिघल रहे हैं। नूतन वर्षों में किए गए शोध के उपरांत वैज्ञानिकों ने बताया है कि ग्रीनलैंड एवं अण्टार्कटिका में हिमावरण में ह्रास हो रहा है। यह भी आश्चर्यजनक तथ्य है कि अण्टार्कटिका के ही अन्य हिस्सों में तापमान घटा है, जबकि प्रायद्वीप भाग का तापमान तीव्रता से बढ़ रहा है, जिस पर शोध कार्य जारी है। भारत की प्रमुख नदी गंगा का मुख्य जलस्रोत गंगोत्री हिमनदी भी तीव्रता से पीछे हट रहा है। इस प्रकार यदि विश्व की हिम पिघलती रही तो सागर तल में भी उत्थान होगा।

बंजर भूमि को सुधारना

मानवीय एवं प्राकृतिक क्रियाओं की त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया के द्वारा मिट्टी की ऊपरी परत उड़कर या बहकर चली जाती है तो उसे बंजर भूमि कहते हैं। इसके अतिरिक्त वह चट्टानी क्षेत्र जिसके ऊपर मिट्टी का आवरण नहीं पाया जाता है, उसे भी बंजर भूमि कहते हैं। यहाँ फसल उत्पादन नहीं होता है।

बंजर भूमि को सुधारने के लिये सर्वप्रथम कृत्रिम रूप से मिट्टी का आवरण बनाया जाए तथा कृत्रिम खादों का उपयोग करके ऐसी फसलों का उत्पादन किया जाए जो भूमि सुधार से संबंधित हो तथा फसल के अतिरिक्त विभिन्न पेड़ पौधे तथा झाड़ियाँ उगाई जाएँ। खनन कार्य से बनी बंजर भूमि में खेत मैदान, बाग-बगीचे, स्विमिंगपुल, नई कॉलोनियाँ बांध, स्टेडियम तथा मनोरंजन स्थलों के रूप में विकसित किया जाए।

बंजर भूमि के विकास के लिये ही राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड की स्थापना की गई है जो निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष ध्यान देता है-

1. ईंधन लकड़ी तथा चारा उत्पादन पर विशेष ध्यान देना
2. वृक्षारोपण क्रिया पर विशेष बल
3. किसानों को वृक्षारोपण के लिये प्रेरित करना तथा महिलाओं को भी वृक्षारोपण कार्य में भागीदार बनाना
4. बंजर भूमि विकास में सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना
5. सामाजिक संस्थाओं का सहयोग बंजर भूमि विकास कार्यों में अधिकतम लेना भारत सरकार भी इस योजना में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है। केन्द्र सरकार द्वारा ही 1992 में इस बोर्ड की स्थापना की थी। राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड का मुख्य उद्देश्य बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना तथा वृक्षारोपण कार्य में जनता का सहयोग प्राप्त कर विस्तृत कार्यक्रम का संचालन करना है। इसके अतिरिक्त पशु प्रबंधन, जलावन लकड़ियों का विकास, वानिकी आदि कार्यक्रमों के संचालन पर भी विशेष ध्यान देता है।

आपदा प्रबंधन – Disater Management

Disaster Management can be defined as the organization and management of resources and responsibilities for dealing with all humanitarian aspects of emergencies, in particular preparedness, response and recovery in order to lessen the impact of disasters

आपदा प्रबंधन के दो विभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। आपदा पूर्व व आपदा पश्चात का प्रबंधन। आपदा पूर्व प्रबन्धन को जोखिम प्रबन्धन के नाम से भी जाना जाता है। आपदा के जोखिम भयंकरता व संवेदनशीलता के संगम से पैदा होते हैं जो मौसमी विविधता व समय के साथ बदलता रहता है। जोखिम प्रबन्धन के तीन अंग हैं। जोखिम की पहचान, जोखिम में कमी व जोखिम का स्थानान्तरण किसी भी आपदा के जोखिम को प्रबन्धित करने के लिये एक प्रभावकारी रणनीति की शुरूआत जोखिम की पहचान से ही होती है। इसमें प्रकृति ज्ञान और बहुत सीमा तक उसमें जोखिम के बारे में सूचना शामिल होती है। इसमें विशेष स्थान के प्राकृतिक वातावरण के बारे में जानकारी के अलावा वहाँ आ सकने का पूर्व निर्धारण शामिल है। इस प्रकार एक उचित निर्णय लिया जा सकता है कि कहाँ व कितना निवेश करना है। एक ऐसी परियोजना को डिज़ाइन करने में मदद मिल सकती है। जो आपदाओं के गम्भीर प्रभाव के सामने स्थिर रह सकें। अतः जोखिम प्रबन्धन में व इससे जुड़े पेशेवरों का कार्य जोखिम क्षेत्रों का पुर्वानुमान लगाना व उसके खतरे के निर्धारण का प्रयास करना तथा उसके अनुसार सावधानी बरतना, मानव संसाधन व वित्त जुटाना व अन्य आपदा प्रबन्धन के इस उपशाखा का ही अंग है।

आपदायें और आपदा प्रबंधन के उपाय (Preventive measures of Disasters

जब प्रकृति में असंतुलन की स्थिति होती है, तब आपदायें आती हैं जिसके कारण विकास एवं प्रगति बाधक होती है। प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त कुछ विपत्तियाँ मानवजनित भी होती हैं। प्राकृतिक आपदायें जैसे- भूकम्प, सुनामी, भूस्खलन, ज्वालामुखी, सूखा, बाढ़, हिमखण्डों का पिघलना आदि हैं। धैर्य, विवेक, परस्पर सहयोग व प्रबंधन से ही इन आपदाओं से पार पाया जा सकता है। आपदा प्रबंधन दो प्रकार से किया जाता है आपदा से पूर्व एवं आपदा के पश्चात।

Abstract - Disasters are the result of imbalance in nature that leads to hindered development and

progress. Besides natural calamities there are several manmade situations. Natural disaster are earthquake, Tsunami, Landslide, coopcration of volcanocs, draught, flood, melting of glaciers etc. Patience, intelligence, mutual cooperation and proper management are the remedial means. Disaster management is of two types-pre disaster and post disaster.

भारत की प्राकृतिक संरचना में पर्वतों, नदियों, समुद्रों आदि का बहुत महत्त्व है। इनसे असंख्य लोगों की आजीविका चलती है। लेकिन जब प्रकृति में असंतुलन की स्थिति होती है, तब आपदायें आती हैं इनके आने से प्रगति बाधित होती है और परिश्रम तथा यत्न पूर्वक किये गये विकास कार्य नष्ट हो जाते हैं। ज्योतिष विज्ञान के अनुसार जब ग्रह बुरी स्थिति में होते हैं तब आपदायें आती हैं धर्म शास्त्र के अनुसार जब पाप बढ़ जाते हैं तब पृथ्वी पर आपदायें आती हैं इन आपदाओं में बाढ़, चक्रवात, बवन्डर, भूकम्प, भूस्खलन, सुनामी, सूखा, ज्वालामुखी विस्फोट, दावानल, टिट्डी दल का हमला, महामारी, समुद्री तूफान, गर्म हवाएँ और शीतलहर आदि इन प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त कुछ मानव जनित आपदायें हैं जैसे साम्प्रदायिक दंगे, आतंकवाद आगजनी, शरणार्थी समस्यायें, वायु, रेल व सड़क दुर्घटनाएँ आदि हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार की आपदायें हैं जो मानव जीवन को तहस नहस कर देती हैं। भारत में 1980 से 2010 के बीच में समुचित आपदाओं में सूखा 7 बार, भूकम्प 16 बार, महामारी 56 बार, अत्यधिक गर्मी 38 बार, बाढ़ 184 बार, कीट संक्रमण 1 बार, बड़े पैमाने पर सूखा 34 बार, तूफान 92 बार, ज्वालामुखी 2 बार आ चुके हैं। जिनसे जन-जीवन अस्त-व्यस्त हुआ और बहुत बड़ी आर्थिक और जन-जीवन की हानि हुयी।

भूकम्प - भूकम्प प्राकृतिक आपदा के सर्वाधिक विनाशकारी रूपों में से एक है, जिसके कारण व्यापक तबाही हो सकती है। भूकम्प का साधारण अर्थ है ''भूमि का कम्पन'' अर्थात भूमि का हिलना। भूकम्प पृथ्वी की आंतरिक क्रियाओं के परिणाम स्वरूप आते हैं। पृथ्वी के आंतरिक भाग में होने वाली क्रियाओं का प्रभाव पर्पटी पर भी पड़ता है और उसमें अनेक क्रियायें होने लगती हैं। जब पर्पटी की हलचल इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि वह चट्टानों को तोड़ देती है और उन्हें किसी भ्रंश के साथ गति करने के लिये मजबूर कर देती है, तब धरती के सतह पर कम्पन या झटके, उत्पन्न हो जाते हैं। कम्पन ही भूकम्प होते हैं, भूकम्प का पृथ्वी पर विनाशकारी प्रभाव भूस्खलन धरातल का धसाव मानव निर्मित पुलों, भवनों जैसी संरचनाओं की क्षति या नष्ट होने के रूप में दृष्टि गोचर होता है वैसे तो भूकम्प पृथ्वी पर कहीं भी व कभी भी आ सकते हैं लेकिन इनके उत्पत्ति के लिये कुछ क्षेत्र, बहुत ही संवेदनशील होते हैं। संवेदनशील क्षेत्र से तात्पर्य पृथ्वी के उन दुर्बल भागों से है जहाँ बलन और भ्रंश की घटनाएँ अधिक होती हैं इसके साथ ही महाद्वीप और महासागरीय सम्मिलन के क्षेत्र ज्वालामुखी भी भूकम्प उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्थान हैं।

चक्रवात - हम सभी जानते हैं कि इसमें वायु बाहर की ओर से केन्द्र की ओर घूमती हुई ऊपर उठती है। इसके केन्द्र में न्यून वायुदाब तथा चारों ओर उच्च वायुदाब रहता है। वायु की क्षैतिज एवं लम्बवत दोनों ही गति तेज रहती है जिसमें आंधी, तूफान के साथ-साथ ओलावृष्टि तथा भारी वर्षा होती है। थोड़ी ही देर में मौसम परिवर्तित हो जाता है। इस सन्दर्भ में उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों हरिकेन तथा टाईफून का उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है। चीन में इन्हें टाईफून तथा दक्षिणी संयुक्त राज्य एवं अमेरिका एवं मैक्सिको में इन्हें हरिकेन कहा जाता है इसकी गति 90-125 कि.मी. प्रति घंटा तक देखी गयी है। वायु की तीव्र गति के कारण समुद्री जल के खम्भे बनकर तटवर्ती क्षेत्रों में घुसकर विनाश का भयावह ताण्डव करते हैं।

भूस्खलन - भूस्खलन भी एक प्राकृतिक घटना है भूस्खलन भूमि उपयोग को सीधा प्रभावित करता है। प्रायः पर्वतीय भागों जैसे भारत के हिमालयी पर्वत के ढालू भागों में घटती है। चट्टानों का नीचे खिसकना भूस्खलन कहलाता है। यह

क्रिया प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से हो सकती है इसमें सड़क अवरुद्ध हो जाती है। बाँध टूट जाते हैं तथा गाँव शहर नष्ट हो जाते हैं, भूस्खलन के लिये प्राकृतिक कारणों में भूकम्प सबसे प्रभावशाली कारक है। इसके साथ ही वनों के ह्रास, जल के रिसाव, अपश्रय भू-क्षरण तथा अधिक वर्षा के साथ ही मानवीय क्रियायें जैसे- सड़क निर्माण, उत्खनन, सुरंग, बांध, जलाशय से भूस्खलन को बढ़ावा मिलता है। सिक्किम, भूटान तथा नेपाल जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन के कारण प्रायः मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

बाढ़ आपदा - किसी बड़े शहर भू-भाग का जलमग्न का जलमग्न होना जिसमें अपार जनधन की हानि होती है, बाढ़ कहलाती है। इसके उत्तरदायी कारकों को अतिभ्रिष्ट पर्यावरण विनाश, भूस्खलन, बांध, तटबंध तथा बैराज का टूटना, सड़क तथा अन्य निर्माण कार्य नदियों में गाद बढ़ना नदियों में निर्मित बांधों में तलछट भरना आदि है। केन्द्रीय बाढ़ आयोग की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1953 से 1990 के मध्य औसत रूप से प्रतिवर्ष 7944 मि.हे. क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित होता रहता है। बाढ़ द्वारा सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र वर्ष 1978 में 17500 मि.हे. क्षेत्र भी रहा है। 1953 से 1990 के मध्य की अवधि में औसत रूप से प्रतिवर्ष 12, 18, 690 भवन तथा 1532 व्यक्ति बाढ़ आपदा के शिकार हुए हैं। जबकि इसी अवधि में सर्वाधिक 3507542 भवनों का विनाश वर्ष 1978 में तथा सर्वाधिक 11316 व्यक्ति वर्ष 1977 में बाढ़ के शिकार हुए हैं। हमारे देश में न केवल बाढ़ प्रभावित भूभाग बढ़ता जा रहा है बल्कि बाढ़ प्रभावित जनसंख्या भी बढ़ती जा रही है। खाद्य एवं कृषि संगठन के एक ताजा अनुमान के अनुसार देश की लगभग 25 करोड़ आबादी उन क्षेत्रों में निवास कर रही है जहाँ बाढ़ के प्रकोप की आशंका है।

सुनामी आपदा - सुनामी दो शब्दों से मिलकर बना है TSU का अर्थ है बन्दरगाह और NAMI का अर्थ है लहरें। इसे ज्वारीय या भूकम्पीय लहरें भी कहते हैं। समुद्र की सतह हिलने के कारण तली के ऊपर भरा पानी ऊपर नीचे उठता गिरता है। जिससे सुनामी लहरें पैदा होती हैं। भारत में सुनामी का मुख्य केन्द्र उत्तरी भाग एक ही संवेदन शील भूकम्पीय पट्टी से जुड़ा है। यह पट्टी गुजरात के भुज क्षेत्र से हिमालय की तलहटी और म्यांमार होती हुयी सुमात्रा द्वीप तक है।

बादल फटना - इनमें हवायें तेजी से उठती हैं। बिजली की चमक एवं बादलों की गरज के साथ तीव्र वर्षा होती है ओलापात भी हो सकता है। मूसलाधार वृष्टि के कारण गाँव के गाँव बह जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक मानव जनित आपदायें होती हैं इनका निराकरण हमारी सूझबूझ, सावधानी, विवेक व परस्पर सहयोग से संभव है। देश में लगभग

हर समय किसी न किसी प्रकार की प्राकृतिक मानव-जनित या अन्य प्रकार की आपदायें आती रहती हैं। इसका प्रबन्धन करने की आवश्यकता होती है।

आपदा प्रबन्धन कई स्तर पर होते है

केन्द्रीय स्तर पर आपदा प्रबन्धन - उच्च अधिकार प्राप्त समिति (एच.पी.सी.) ने राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक एवं प्रभावी आपदा प्रबन्धन व्यवस्था व आपदा प्रबन्धन मन्त्रालय कठिन किया जाए जो कि बाढ़ में एन.सी.सी.एम. जैसे केन्द्रों और प्राधिकरणों सहित उचित सहायक निकायों का गठन कर सकता है अथवा सहायता के लिये वर्तमान केन्द्रों का उपयोग हो सकता है। आपदा प्रबन्धन हेतु केन्द्र सरकार द्वारा जो सर्वदलीय समिति का गठन किया गया है उसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। इस योजना के संचालन हेतु एवं वैज्ञानिक एवं तकनीकी सलाहकार समिति भी उसकी सहायता करेगी।

राज्य स्तर पर आपदा प्रबन्धन - हमारे देश में राष्ट्रीय आपदाओं से निपटने की जिम्मेदारी अनिवार्य रूप से राज्यों की है। केन्द्र सरकार की भूमिका भौतिक एवं वित्तीय संसाधनों की सहायता देने की है। अधिकतर राज्यों में राहत आयुक्त हैं जो अपने राज्यों में प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में राहत एवं पुनर्वास कार्यों के प्रभारी हैं तथा पूर्ण प्रभारी मुख्य सचिव होता है तथा राहत आयुक्त उसके निर्देश एवं नियन्त्रण में कार्य करते हैं। आपदा के समय प्रभावित लोगों तक पहुँचने के प्रयासों में सम्मिलित करने के लिये राज्य सरकार, गैर सरकारी संगठनों तथा अन्य राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय संगठनों को आमन्त्रित करती है।

जिलास्तर पर आपदा प्रबन्धन - आपदा प्रबन्धन हेतु सभी सरकारी योजनाओं और गतिविधियों के क्रियान्वयन के लिये जिला प्रशासन केन्द्र बिन्दु है। कम से कम समय में राहत कार्य चलाने के लिये जिला अधिकारी को पर्याप्त अधिकार दिये गये हैं। प्रत्येक जिले में आने वाली आपदाओं से निपटने के लिये अग्रिम आपात योजना बनाना जरूरी है तथा निगरानी का अधिकार जिला मजिस्ट्रेट को है।

आपदा प्रबन्धन में महत्त्वपूर्ण क्षेत्र

1. संचार- संचार आपदा प्रबन्धन में अत्यधिक उपयोगी हो सकता है। संचार साधनों के माध्यम से जागरुकता, प्रचार-प्रसार तथा आपदा प्रतिक्रिया के समय आवास सूचना व्यवस्था के माध्यम से काफी सहायक हो सकता है।

2. सुदूर संवेदन- अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी आपदा के प्रभाव को कारगर ढंग से करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसका उपयोग-

1. शीघ्र चेतावनी रणनीति को विकसित करना
2. विकास योजनाएँ बनाने एवं लागू करने में
3. संचार और सुदूर चिकित्सा सेवाओं सहित संसाधन जुटाने में
4. पुनर्वास एवं आपदा पश्चात पुनर्निर्माण में सहायता हेतु किया जा सकता है।

3. भौगोलिक सूचना प्रणाली - भौगोलिक सूचना प्रणाली सॉफ्टवेयर भूगोल और कम्प्यूटर द्वारा बनाए गए मानचित्रों का उपयोग, स्थान आधारित सूचना के भण्डार के समन्वय एवं आकलन के लिये रहता है। भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग वैज्ञानिक जाँच, संसाधन प्रबन्धन तथा आपदा एवं विकास योजना में किया जा सकता है।

आपदा नियन्त्रण में व्यक्ति की भूमिका - भूकम्प, बाढ़, आंधी, तूफान में एक व्यक्ति क्या प्रबन्धन कर सकता है। इसका आपदा के सन्दर्भ में निम्नलिखित भूमिका सुझायी गई है-

भूकम्प के समय व्यक्ति की भूमिका - ऐसे समय में बाहर की ओर न भागें, अपने परिवार के सदस्यों को दरवाजे के पास टेबल के नीचे या यदि बिस्तर पर बीमार पड़े हों तो उन्हें पलंग के नीचे पहुँचा दें, खिड़कियों व चिमनियों से दूर रहें। घर से बाहर हों तो इमारतों, ऊँची दीवारों या बिजली के लटकते हुए तारों से दूर रहें, क्षतिग्रस्त इमारतों में दोबारा प्रवेश न करें।

भूकम्प का भी पूर्वानुमान लग सकेगा - टी.वी. रेडियो, इन्टरनेट से जहाँ तक सम्भव हो जुड़े रहें, अधिक वर्षा और अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान के बाद अब भूकम्प की भी भविष्यवाणी की जा सकेगी लेकिन इसका पता कम्प्यूटर पर काम कर रहे व्यक्ति को सिर्फ कुछ सेकेण्ड पहले ही लग सकेगा। कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, यू.एस. ज्योलॉजीकल सर्वे तथा कैलीफोर्निया के खनिज और भू-भागीय विभाग के भूकम्पशास्त्री लगातार भूकम्प की ऑन लाइन पर

भविष्यवाणी कर सकने की कोशिश कर रहे हैं। यह आपातकाल में ऐसे आंकड़े भेजेगा। जिससे कम्प्यूटर यूजर्स तक इमेल भेजा जा सकेगा। ट्राइनेट का लक्ष्य है कि 600 शक्तिशाली गति सेंसर और 150 बड़े इंटरनेशनल मिलकर आने वाली भूकम्पों के बारे में लोगों को सूचित करें। अगर ट्राइनेट अपने प्रस्तावित कार्य को करने में समर्थ हुआ तो कैलिफोर्निया भूकम्प क्षेत्र का निरीक्षण कर सकने वाला पहला राज्य होगा इस प्रकार भूकम्प का पूर्वानुमान लगाने की क्षमताएँ विकसित हो चुकी हैं। संक्षेप में कैलीफोर्निया के खनिज और भूगर्भीय विभाग के प्रमुख जिम डेविड कहते हैं कि सेंसर पृथ्वी थरथराने जैसे घटना के तुरन्त बाद कम्प्यूटर के जरिए सूचना देने में सक्षम होगा।

वाहन में हो - यदि कार या बस में सवारी करते समय आपको भूकम्प के झटके महसूस हों तो चालक से वाहन को एक तरफ करके रोकने को कहें, वाहन के भीतर ही रहें।

घरों में हो - जितनी जल्दी हो सके चूल्हे आदि सभी तरह की आग बुझा दें, हीटर बन्द कर दें, यदि मकान क्षतिग्रस्त हो गया हो तो बिजली, गैस व पानी बन्द कर दें। यदि घर में आग लग गई हो और उसे तत्काल बुझाना सम्भव न हो तो तत्काल निकलकर बाहर जायें। यदि गैस बन्द करने के बाद भी गैस के रिसाव का पता चले तो घर से फौरन बाहर चले जायें। पानी बचायें आपातकालीन स्थिति के लिये सभी बर्तन भरकर रख लें। पालतू जानवरों को खोल दें।

बाढ़ के समय व्यक्ति की भूमिका - बाढ़ की पूर्व सूचना और सलाह के लिये रेडियो सुनें। यदि आपको बाढ़ की चेतावनी मिल गयी हो या आपको बाढ़ की आशंका हो तो बिजली के सभी उपकरणों के कनेक्शन अलग कर दें तथा अपने सभी मूल्यवान और घरेलू सामान कपड़े आदि को बाढ़ के पानी की पहुँच से दूर कर दें। खतरनाक प्रदूषण से बचने के लिये सभी कीटनाशकों को पानी की पहुँच से दूर ले जायें। यदि आपको घर छोड़ना पड़ जाये तो बिजली व गैस बन्द कर दें। वाहनों, खेती के पशुओं और ले जा सकने वाले सामान को निकट के ऊँचे स्थान पर ले जायें, यदि आपको घर से बाहर जाना पड़े तो घर के बाहरी दरवाजे और खिड़कियाँ बंद कर दें। कोशिश करें की आपको बाढ़ के पानी में पैदल या कार से ना चलना पड़े। बाढ़ग्रस्त इलाकों में अपनी मर्जी से कभी भी भटकते न फिरें।

चक्रवात या आंधी तूफान में व्यक्ति की भूमिका - पूर्व सूचना व सलाह के लिये टी.वी., रेडियो सुनें सुरक्षा के लिये पर्याप्त समय निकल जाने दें। चक्रवात कुछ ही घण्टों में दिशा, गति और तीव्रता बदल सकता है और मध्यम हो सकता है। इसीलिये ताजा जानकारी के लिये रेडियो, टी.वी. से निरन्तर सम्पर्क रखें।

तैयारी - यदि आपके इलाके में तूफानी हवाओं या तेज झंझावात आने की भविष्यवाणी की गई तो खुले पड़े तख्तों, लोहे की नाली, चादरों, कूड़े के डिब्बों या खतरनाक सिद्ध होने वाले किसी भी अन्य सामान को स्टोर में रखें या कसकर बाँध दें, बड़ी खिड़कियों को टेप लगाकर बंद कर दें ताकि वे खड़खड़ाएं नहीं, निकटतम आश्रय स्थल पर पहुँचें या कोई जिम्मेदार सरकारी एजेन्सी आदि हो तो इलाके को खाली कर दें।

जब तूफान आ जाये - घर के भीतर रहें तथा अपने घर के सबसे मजबूत हिस्से में शरण लें टी.वी., रेडियो या अन्य साधनों से दी जाने वाली सूचनाओं का पालन करें। यदि छत उड़ने शुरू हो तो घर की ओट वाली खिड़कियों को खोल दें, यदि खुले में हों तो बचने के लिये ओट लें तूफान के शान्त होने पर बाहर या समुद्र के किनारे न जायें। आमतौर से चक्रवातों के साथ-साथ समुद्र या झीलों में बड़ी-बड़ी तूफानी लहरें उठती हैं तथा यदि आप तटवर्ती इलाके में रहते हों तो बाढ़ के लिये निर्धारित सावधानियाँ बरतें।

Green Building Technology

Green Building Technology, also known as **Green Construction**, is the implementation of design in structures, **buildings** and commercial spaces that are environmentally accountable and resource-efficient throughout the **building's** life cycle, i.e., from planning to design, **construction**, operation, maintenance, renovation.

ग्रीन बिल्डिंग उस बिल्डिंग को कहा जाता है जिसके निर्माण से लेकर रखरखाव में पर्यावरण का महत्वपूर्ण रोल होता है। इस तरह की बिल्डिंग में प्राकृतिक संपदा का उपयोग ज्यादा किया जाता है। ग्रीन बिल्डिंग में बिजली, पानी और अन्य संसाधनों की खपत एक आम बिल्डिंग से कम होती है। बिजली और पानी के खपत कम करने के लिए फ्लाई ऐश से बनी ईंटों का इस्तेमाल, हाई एनर्जी कंजर्वेशन लैम्प, वाटर रिसाइकलिंग और रेनवाटर हार्वेसटिंग जैसे फीचर का इस्तेमाल किया जाता है।

ग्रीन बिल्डिंग के लिए मानदंड ग्रीन बिल्डिंग का दर्जा देने के लिए कई तरह के मापदंड का मूल्यांकन करना होता है।

1. बिल्डिंग की साइट प्लानिंग क्या है और इसका डिजाइन कैसा किया गया है। 2. बिल्डिंग के निर्माण के समय ऊपरी परत पर मिट्टी का संरक्षण किया गया है या नहीं। 3. हीटिंग, एयर कंडीशनिंग, वेंटिलेशन, प्रकाश की व्यवस्था, बिजली और पानी की समुचित व्यवस्था है या नहीं। 4. बिल्डिंग के डिजाइन का सही उपयोग कर के पारंपरिक ऊर्जा की मांग को कम किया गया है कि नहीं। 5. अक्षय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करके ऊर्जा की जरूरतों को पूरा कर रहा है कि नहीं। 6. जल और अपशिष्ट का प्रयोग का प्रबंधन सही ढंग से करके फिर से उपयोग में लाने के लिए वाटर रिसाइकलिंग और रेनवाटर हार्वेसटिंग की व्यवस्था है या नहीं। 7. इमारत के निर्माण के समय नेचुलर सामाग्री का उपयोग किया गया है कि नहीं 8. नवीकरण ऊर्जा आधारित वॉटर हीटिंग सिस्टम या सोलर हीटिंग सिस्टम लगा हो।ग्रीन बिल्डिंग के फायदें ग्रीन बिल्डिंग एक साधारण घर के मुकाबले 30 से 40 फीसदी बिजली की बचत करता है। वहीं, 30 से 70फीसदी तक पानी की बचत करता है। ग्रीन बिल्डिंग में रहना स्वास्थ के लिए अनुकूल होता है क्योंकि इस तरह के बिल्डिंग में प्राकृतिक प्रकाश और स्वच्छ हवा मिलता है। वतावरण में प्रदूषण के लेवल कम करने में भी मदद मिलती है। घर खरीदने से पहले कैसे पता करें ग्रीन बिल्डिंग है या नहीं ग्रीन बिल्डिंग के नाम पर घर खरीदने से पहले यह जांच ले की उस बिल्डिंग को ग्रीन बिल्डिंग जांच करने वाली संस्था से क्या रेटिंग मिला है। देश में दो संस्थान ग्रीन बिल्डिंग की रेटिंग देती है। पहली है इंडियन ग्रीन बिल्डिंग काउंसिल (आईजीबीसी या एलईईडी) और दूसरा ग्रीन रेटिंग फार इंटीग्रेटेड हैबिटेट एसेसमेंट (गृहा)। ये एजेंसियां बिल्डिंग का डिजाइन, निर्माण साम्रागी, ऊर्जा दक्षता, वेंटिलेशन, प्रकाश व्यवस्था, पानी और कचरा प्रबंधन जैसे मानकों का गहन अध्यन करती है। इसके बाद प्रोजेक्ट को ग्रीन बिल्डिंग की रेटिंग देती है। अगर, बिल्डर कहता है कि प्रोजेक्ट ग्रीन बिल्डिंग कॉनसेप्ट पर बनाया गया है तो रेटिंग सर्टिफिकेट मांगे। देंखे की प्रोजेक्ट को क्या रेटिंग मिली है। अगर, नहीं मिला है तो ग्रीन बिल्डिंग के नाम पर अधिक कीमत दे कर घर नहीं खरीदें।

Environment (Protection) Act

The **Environment** (**Protection**) **Act**, 1986 authorizes the central government to **protect** and improve **environmental** quality, control and reduce pollution from all sources, and prohibit or restrict the setting and /or operation of any industrial facility on **environmental** grounds.

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 - भारत के पर्यावरण की रक्षा

1986 का पर्यावरण संरक्षण अधिनियम भोपाल गैस त्रासदी और 1972 में स्टॉकहोम स्वीडन में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में भारत की भागीदारी के लिए एक प्रतिक्रिया के रूप में आया था। इस अधिनियम में केंद्र सरकार को, उपचार के उपायों के साथ-साथ देश में पर्यावरण की रक्षा के लिए कार्रवाई करने की शक्तियां भी दी गयी हैं।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रावधान

19 नवंबर, 1986 को पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 लागू हुआ और इसे पूरे देश में लागू कर दिया गया। इस अधिनियम में विभिन्न सरकारी कर्मचारियों और एजेंसियों की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों से संबंधित 4 अध्याय और 26 खंड शामिल हैं। अध्याय 1 अधिनियम, क्षेत्राधिकार और उसके विस्तार के शीर्षक से संबंधित है, जब अधिनियम लागू किया गया था तो सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि शर्तों की परिभाषा अधिनियम में शामिल थी। अध्याय 2 अधिनियम से संबंधित उस शक्ति पर जोर देता है जो केंद्र सरकार के पास है , जबकि अध्याय 3 उन कार्यवाइयों के बारे में बात करता है जो केंद्र सरकार पर्यावरण की रक्षा करने के लिए ले सकती है। अंतिम अध्याय में 1986 के पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के उद्देश्यों को सुनिश्चित करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति के लिए केंद्र सरकार की शक्ति को रेखांकित किया गया है।

1986 का पर्यावरण संरक्षण अधिनियम **केंद्र सरकार** को , प्रक्रिया हेतु कार्य करने या दिशा निर्देशों को बनाने में, अधिनियम के नियमों और दिशानिर्देशों का उल्लंघन करने वाली किसी भी संस्था को बंद करने में, किसी उद्गयोग विशेष पर विनियमन और निषेध लगाने में और साथ ही कई ऐसी कई चीजें जो पर्यावरण संरक्षण अधिनियम का पालन करती उनको सुनिश्चित करने में, सक्षम बनाता है।

इस अधिनियम के तहत केंद्र सरकार **पर्यावरण प्रदूषण** को प्रशासित करने के लिए नियम और अधिनियम भी बना सकती है। 1986 के पर्यावरण संरक्षण अधिनियम में इसके किसी भी नियम का उल्लंघन करने की स्थित में दंड को भी शामिल किया गया है। यदि इस प्रकार का कोई भी उल्लंघन हो, तो विभाग और कार्यालय प्रभारी का मुखिया उस अपराध के लिए उत्तरदायी होगा। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम ने, **अलवर** में अरावली क्षेत्र, **राजस्थान**, तटीय संवेदनशील क्षेत्रों और **उत्तराखंड** में डून घाटी जैसे कुछ क्षेत्रों को पारिस्थितिकीय संवेदनशीलता के कारण प्रतिबंधित गलियारों के रूप में परिभाषित किया है।

Air Prevention and Control of Pollution Act

The **Air** (**Prevention and Control of Pollution**) **Act**, **1981**. ... The **Act** provides for

the **prevention**, **control** and abatement of **air pollution**. It also provides for the establishment of Boards with a view to carrying out the aforesaid purposes.

Water (Prevention and Control of Pollution) Act

The **Water Act** (1974)

This is an **Act** to provide for the **prevention and control** of **water pollution** and the maintaining or restoring of wholesomeness of **water** through various management guidelines and restrictions. The **act** was introduced and incorporated into the Constitution of India in 1974.